प्रकाशक

वैदिक प्रकाशन

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा (पं०)

15, हनुमान रोड, नई दिल्ली-110001

प्रस्तुत पुस्तक मूल सत्यार्थ प्रकाश का संक्षिप्त सार मात्र है ।
मूल सत्यार्थ प्रकाश अनेक भाषाओं में उपलब्ध है ।

।।ओ३म्।।

बाल (लघु) सत्यार्थप्रकाश

-: लेखिका :-

अरुणा सतीजा 'टकांराश्री'

-: प्रकाशक :-

वैदिक प्रकाशन

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा (पं०)

15, हनुमान रोड, नई दिल्ली-110001

प्रकाशकीय

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा वैदिक धर्म एवं महर्षि दयानन्द की मान्यताओं को जन–जन तक पहुँचाने के लिए प्रारम्भ से ही प्रयासरत है। आर्यसमाज की विचारधारा को विशेष रूप से बच्चों में प्रचारित–प्रसारित करना आवश्यक है क्योंकि आने वाले दिनों में उन्हीं को आर्यसमाज की विरासत सँभालनी है। इसको ध्यान में रखकर हम श्रीमती अरुणा सतीजा द्वारा लिखित **'बाल (लघु) सत्यार्थप्रकाश'** प्रकाशित कर रहें हैं ताकि इसे पढ़कर बच्चे मूल **सत्यार्थप्रकाश** को पढ़ें, सत्य–असत्य का निर्णय कर आजीवन सत्य के मार्ग पर चलें और वैदिक धर्म के प्रचार–प्रसार में अपनी सक्रिय भागीदारी निभाएँ। आशा है, बच्चों के साथ–साथ आम जन भी इसे पढ़कर महर्षि दयानन्द के विचारों से अवगत होंगे और आर्य विचारधारा को जीवन में उतारेंगे।

इस पुस्तक के लेखन के लिए हम श्रीमती सतीजा के हृदय से आभारी हैं। भविष्य में भी आपको इसी तरह की अन्य रचनाएं पढ़ने को मिलती रहेंगी।

– विनय आर्य, महामन्त्री

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा (पंजी.)

सत्यार्थप्रकाश : सम्मतियाँ एवं प्रभाव

सत्यार्थप्रकाश के एक–एक अक्षर ने दीपक बन मुंशीराम के जीवन को जगमगा दिया। स्वामी श्रद्धानन्द दीपक से दिनकर बन गए। गुरुकुल स्थापित कर महादीपकों को जन्म देने लगे। वह विश्व आर्य व्योम के उज्ज्वल नक्षत्र बन गए और देश और धर्म पर बलिदान हो गए।

जैकालीय फ्रांसिसी विद्वान् थे। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश को पढ़ा और उससे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने 'बाइबिल इन इंडिया' में लिखा–*"सब विद्या और भलाइयों का भण्डार आर्यावर्त है। सब विद्या और मत सभी इसी देश से फैले हैं।"*

"मानवता के इतिहास की बहुमूल्य एवं निर्देशक सामग्री भारत भूमि में संचित है।" – *मैक्समूलर*

"भारत की स्वाधीनता की नींव रखने वाले वास्तव में स्वामी दयानन्द पहले व्यक्ति थे।" – सरदार वल्लभभाई पटेल

"मैं सत्यार्थप्रकाश पढ़कर इस रूप में आया।" – बिस्मिल

★ सत्यार्थप्रकाश पढ़कर दीन मुहम्मद स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती बन गये और गाजियाबाद में उन्होंने विशाल संन्यास आश्रम बनवाया।

★ गुरुदत्त ने इसे 18 बार पढ़ा और नास्तिक से आस्तिक बन गये। उन्होंने जीवन भर वैदिक धर्म का प्रचार किया।

★ इस अमर ग्रन्थ ने एक नहीं, दो नहीं, अपितु हजारों लोगों के जीवन बदल दिये। इसके प्रभाव के कारण पुराणों के पाठ बदले, बाइबल का रूपान्तर हो गया और कुरान के मार्ग बदल गये।

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत

अमूल्य ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश

* जो महानुभाव सत्यार्थप्रकाश को पूर्णरूप से पढ़ना चाहते हैं वे सभा के विक्रय केंद्र से इसे लागत से भी कम मूल्य पर खरीद सकते हैं।
* इस पुस्तक की पूरी ऑडियो डीवीडी, एम.पी.3 सीडी भी उपलब्ध है। जिससे आप इस ज्ञान को पूरा सुन सकते हैं।
* इस पुस्तक को www.sathyarthaprakash.com पर भी देख सकते हैं।

सत्यार्थप्रकाश

(एक कवि के शब्दों में)

मोह महातम हरने वाला, ज्ञान उजाला करने वाला,
भव्य भावना भरने वाला, दिव्य ज्योति का स्रोत सितारा।

है सत्यार्थप्रकाश हमारा, वैदिक पाठ पढ़ाने वाला,
गत गौरव गुण गाने वाला, फिर से सतयुग लाने वाला।

दयानन्द ऋषि का चखतारा, है सत्यार्थप्रकाश हमारा।।
इस ज्ञान–पुंज को पढ़ कर, आर्यो! सर्वत्र सदा फैलाओ।
ऋषि दयानन्द का ऋण है सब पर, आओ इसे चुकाओ।।

सत्यार्थप्रकाश पढ़ो–पढ़ाओ।
सुनो–सुनाओ।।

आभार

महर्षि दयानन्द का जिस समय धरती पर अवतरण हुआ उस समय देश पराधीन था, पण्डितों व महन्तों का साम्राज्य था। उन्होंने स्वार्थ के कारण नाना प्रकार के अन्धविश्वासों को जन्म देकर आर्य जाति को अज्ञान के अन्धकूप में डाल दिया। वर्ण व्यवस्था बड़ी संकीर्ण थी, स्त्रियों की स्थिति नारकीय थी। वेदों के सत्यज्ञान का लोप हो चुका था। भारतवासियों की अति दीन–हीन दशा देख इस महामानव का हृदय पीड़ा से रो उठता था।

ऐसे समय में उन्होंने अनेक आर्ष ग्रन्थों की रचना की जिसमें उनकी सर्वोत्तम कृति 'सत्यार्थप्रकाश' है। यह ग्रन्थ नहीं, जीवन का सत्य दर्शन है, समरस दयानन्द स्वयं उल्लसित रहते हुए लोगों को उल्लास देना चाहते थे। अतः उन्होंने सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ को पाठ, अध्याय आदि में विभाजित न कर 'समुल्लास' शीर्षक दिया ताकि दुनिया के लोग अच्छी तरह उल्लसित और प्रफुल्लित जीवन जीने वाले बनें। इस ग्रन्थ को पढ़ने के बाद केवल हिन्दुओं के ही नहीं, बल्कि अनेक मुसलमानों व ईसाइयों के भी जीवन बदल गये। वे हिन्दू बनकर वैदिक धर्म के प्रचार में लग गए। परिणाम स्वरूप देश स्वतन्त्र हुआ, नारी का सशक्तीकरण

हुआ। जात–पांत की दीवारें गिरने लगीं। काश! स्वामी जी कुछ वर्ष और जीवित रहते! उनके निर्वाण के बाद लगा कि उनके अन्त के साथ–साथ वेदज्ञान का सूर्य भी धीरे–धीरे अस्त हो जाएगा। सौभाग्य से उनके अनुयायी उनकी धरोहर को सुरक्षित रखने और उसकी वृद्धि में लगे हैं।

पर एक कटु सत्य यह भी है कि आज हमारी युवा पीढ़ी सत्यज्ञान से वंचित–सी होती जा रही है। युवक और युवतियां भौतिकता के रंग में रंगते जा रहे हैं, संस्कारों के नाम से वे अपरिचित हैं। गुरुडम का बोलबाला है। धन बटोरना ही उनका लक्ष्य हो गया है। प्यासे हिरण की तरह लोग भागे जा रहे हैं। ऐसे घनघोर अंधकारमय वातवरण में 'सत्यार्थप्रकाश' अर्थात् सत्य के प्रकाश की महती आवश्यकता है। अन्यथा भारत ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व विषाद के भयंकर सागर में डूब जाएगा। यह कालजयी अमर ग्रन्थ मानव जाति के लिए स्तम्भप्रकाश बन उसका कल्याण कर कर सकता है।

इस क्रान्तिकारी ग्रन्थ की उपयोगिता को समझते हुए भूतपूर्व उपराष्ट्रपति श्री भैरोसिंह शेखावत ने सत्यार्थप्रकाश लेखन के 125 वें अन्तर्राष्ट्रीय महोत्सव के अवसर पर जो उनकी अध्यक्षता में आयोजित किया गया था, कहा था कि 'सत्यार्थप्रकाश' प्रत्येक व्यक्ति की जेब में हर समय रहना

चाहिए अर्थात् व्यक्ति को सत्यार्थप्रकाश पढ़ना चाहिए।

'सत्यार्थोदय' स्मारिका के सम्पादक प्रिय अजय जी टंकारा वाला ने अपने सम्पादकीय में लिखा है–" सत्यार्थप्रकाश एक ऐसा रत्न है जिसे केवल पढ़कर समझा जा सकता है कि वह मानव मात्र का ग्रन्थ है। वेदों की ओर जाने की प्रथम पाठशाला है। इसके पढ़ने से ही संकुचित–बंद पड़े मन के दरवाजे खुलते हैं।" अतः जब तक सत्यार्थप्रकाश का घर–घर में, गली–गली में सभी सार्वजनिक स्थानों में, स्कूलों और कालेजों में वितरण नहीं किया जाएगा तब तक जीवन के सत्य का प्रकाश नहीं होगा। अतः मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि इस पवित्र तथा महान कार्य के लिए सौभाग्शाली धनी महानुभाव आगे आएं और महान यज्ञ में आहुतियाँ अर्पित करें। हनुमान जैसे सेवक बनकर इसे जन–जन तक पहुंचाने में जीवन लगा दें।

मैं उन विद्वानों की अति आभारी हूँ जिन्होंने सत्यार्थप्रकाश संबंधी मेरी शंकाओं का समाधान किया और उस पर कुछ लिखने की प्रेरणा दी। इसके फलस्वरूप ही मैं इस बाल (लघु) सत्यार्थप्रकाश को लिख सकी हूं । पुस्तकस्थ त्रुटियों के लिए मैं क्षमार्थी हूं। आशा है, आप सुधीजन मेरा उत्साह बढ़ायेंगे। मुझे आपके सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी।

– टंकाराश्री अरुणा सतीजा

महर्षि दयानन्द सरस्वती के विचार

"मेरा इस ग्रन्थ को लिखने का मुख्य प्रयोजन सत्य–सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादित करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा। अन्धेरे में जो भटक रहे हैं, उन्हें सत्य मार्ग दिखाना न कि किसी की निन्दा करना, उपहास उड़ाना, किसी को दु:खी करना।"

सर्वधर्म समन्वय के विषय में ऋषि के विचार उदारवादी थे। स्वामी जी सत्यार्थप्रकाश में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं– *"सब धर्मों का महत्तम समापवर्तक – (**Highest common factor**) जिसे सभी मानें कोई विरोध न करे उसे सर्वतंत्र सिद्धान्त के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। प्रेम, त्याग, सेवा, परोपकार, सत्य, ईमानदारी, सदाचार आदि ऐसे गुण हैं जिन्हें कोई भी मना नहीं कर सकता। अगर सभी इसे समझ लें तो विवादों का अन्त हो जाए। चहुं ओर सत्य धर्म का उदय हो जाये धरती स्वर्ग बन जाए।"*

स्वामी जी लिखते हैं– *"एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाए बिना भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति का होना दुष्कर है। सब उन्नतियों का केन्द्र स्थान ऐक्य है जहां भाषा भाव और भावना में एकता हो जाए वहां सागर में नदियों की भांति सारे सुख एक–एक कर प्रवेश करने लगते हैं।"*

प्रथम समुल्लास

ईश्वरनाम व्याख्या

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में ईश्वर के बारे में सब भ्रम मिटाते हुए स्पष्ट रूप से लिखा है कि ईश्वर के गुण–कर्म–स्वभाव अनेक हैं। अत: उसके नाम भी अनन्त हैं परन्तु उसका निज तथा सर्वोत्तम नाम 'ओ३म्' है।

उन्होंने लिखा है– '' एक परमपिता परमात्मा की ही उपासना करनी चाहिए क्योंकि वह सत्यस्वरूप है, श्रेष्ठतम है। उसके तुल्य न कभी कोई हुआ है और न होगा।''

''ओ३म् जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता उसी की उपासना करनी योग्य है अन्य की नहीं।''

सब वेदादिशास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान एवं निज नाम 'ओ३म्' को कहा है। अन्य सब गौण नाम हैं। जैसे किसी का मूल नाम 'राम' है। वह किसी का चाचा, मामा, नाना, भाई आदि सब है परन्तु उसका मूल नाम 'राम' है, इसी प्रकार ईश्वर का मूल तथा निज नाम 'ओ३म्' ही है।

गुण–कर्म–स्वभाव के आधार पर स्वामी जी ने

सत्यार्थप्रकाश में परमेश्वर के सौ नाम लिखे हैं परन्तु इनसे भिन्न परमात्मा के अनन्त नाम हैं। जैसे परमात्मा के अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव हैं वैसे उसके नाम भी अनन्त हैं। परमात्मा के ये सौ नाम तो समुद्र के सामने बिन्दुवत् हैं।

जैसे ईश्वर स्वप्रकाश होने से 'अग्नि', विज्ञान स्वरूप होने से 'मनु', सबका पालन करने से 'प्रजापति', परम ऐश्वर्यवान् होने से 'इन्द्र', जीवन मूल होने से 'प्राण', व्यापक होने से 'ब्रह्म', मंगलमय कल्याणकारी होने से 'शिव' और दुष्टों को दण्ड देने–रुलाने से 'रुद्र' आदि नाम से जाना जाता है।

सत्यार्थप्रकाश में वर्णित परमात्मा के सौ नाम इस प्रकार हैं– 1. ओ३म् 2. खम् 3. बल 4. अग्नि 5. मनु 6. प्रजापति 7. इन्द्र 8. प्राण 9. ब्रह्म 10. विष्णु 11. रुद्र 12. शिव 13. अक्षर 14. स्वराट् 15. कालाग्नि 16. दिव्य 17. सुपर्ण 18. गरुत्मान् 19. मातरिश्वा 20. भू 21. भूमि 22. अदिति 23. विश्वधाया 24. विराट् 25. विश्व 26. हिरण्यगर्भ 27. वायु 28. तैजस् 29. ईश्वर 30. आदित्य 31. प्राज्ञ 32. मित्र 33. वरुण 34. अर्चना 35. बृहस्पति 36. उरुक्रम 37. सूर्य 38. परमात्मा 39. परमेश्वर 40. सविता 41. देव 42. कुबेर 43. पृथिवी

44. जल 45. आकाश 46. अन्न 47. अनाद 48. वसु 49. नारायण 50. अत्ता 51. चन्द्र 52. बुद्ध 53. शुद्ध 54. शनैश्चर 55. राहू 56. केतु 57. यज्ञ 58. होता 59. बन्धु 60. पिता, 61. माता 62. आचार्य 63. गुरु 64. अज 65. सत्य 66. ज्ञान 67. अनन्त 68. अनादि 69. सच्चिदानन्द 70. नित्य, 71. निराकार 72. निरंजन 73. गणेश 74. गणपति 75. विश्वेश्वर 76. कूटस्थ 77. शक्ति 78. श्री 79. लक्ष्मी 80. सरस्वती 81. सर्वशक्तिमान् 82. न्यायकारी 83. दयालु 84. अद्वैत 85. निर्गुण 86. सगुण 87. अन्तर्यामी 88. धर्मराज 89. यम 90. भगवान 91. पुरुष 92. विश्वम्भर 93. काल 94. शेष 95. मंगल 96. शंकर 97. महादेव 98. प्रिय 99. स्वयम्भू 100. कवि।

विस्तृत जानकारी के लिए मूल सत्यार्थप्रकाश पढ़ें।

अतः सत्य है जो एक परमेश्वर को छोड़ कर अन्य किसी देवता की उपासना करता है वह कुछ भी नहीं जानता वह विद्वानों में पशु है।

मानव जीवन में लग्न बड़े महत्त्व की चीज है जिसमें लग्न वह बूढ़ा जवान है जिसमें लग्न नहीं वह जवान भी मृत–सा है। देशरक्षा ही सर्वोच्च कार्य है।

सफल जीवन के मुख्य सूत्रः–

1. **शोक निवृत्ति की विद्या–** जो बीत गया उस पर शोक करना व्यर्थ है।

2. **कर्त्तव्य कर्म की विद्या–** अपने क्षेत्र में मन लगा कर काम कीजिए, फल भूल जाइए।

3. **त्याग की विद्या–** त्याग से आपकी आत्मा में परम शांति रहेगी।

4. **भोजन–** कभी भूखे मत रहो। यथा योग्य आहार–विहार करने वाले बनो। सदा सात्विक भाजन करो।

5. **पाप न करने की विद्या–** कर्त्तव्य को सर्वोपरि रख कर उचित–अनुचित शास्त्रानुसार कार्य करना, पाप नहीं। जैसे अर्जुन को बताया गया यहां अपना वध करना पाप नहीं, कर्त्तव्य परायणता है।

6. **विषय भोग–** इन्द्रियों को वश में रखते हुए संयमपूर्वक वस्तुओं का उपभोग करना।

श्री स्वामी दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश ही एक ऐसा ज्ञान भंडार है जिसके द्वारा विश्व, अपनी खोई हुई ज्ञान–सम्पत्ति को पुनः प्राप्त कर सकता है।

– कर्नल अलकाट

द्वितीय–तृतीय समुल्लास

शिक्षा–अध्ययन–अध्यापन विधि

गृहस्थ जीवन में बच्चों का स्थान महत्त्वपूर्ण है। संस्कार विधि में स्वामी जी ने 16 संस्कारों का बहुत सुन्दर वर्णन किया है ताकि बच्चों का सही निर्माण हो सके।

बच्चे के मुख्य तीन गुरु माने जाते हैं, प्रथम– मां, द्वितीय– पिता, तृतीय– आचार्य। तीन से पांच वर्ष तक मां बच्चे में उत्तम मानवीय गुणों का बीजारोपण करे। उसे भूतप्रेत, ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गणों से दूर रखे और उसमें प्रेम, धैर्य, सम्मान आदि श्रेष्ठतम गुणों का विकास करे। तीन से आठ वर्ष तक पिता अंगुली पकड़ उसे व्यावहारिक ज्ञान दे। बोध कथाओं द्वारा उसका मानसिक विकास करे। वर्णमाला आदि का ज्ञान कराए। वेदमन्त्र याद कराये। जब वह पाँच वर्ष का हो जाये तो उसे विद्वान् तथा चरित्रवान गुरु के पास भेज दे। बालक वहां रह कर शिक्षा प्राप्त करे। यदि गुरु को माता–पिता द्वारा सुपात्र बच्चे मिलें तभी वे बच्चों को सुशिक्षा दे सकेंगे।

स्वामी जी ने अनुभव किया कि सभी बुराइयों की जड़ अशिक्षा है। अतः पाँच या आठ वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे को लिंग, धर्म तथा जाति के भेदभाव के बिना अनिवार्य रूप से पाठशाला भेजा जाए। जो माता–पिता ऐसा न करें उन्हें राज्य द्वारा दण्ड दिया जाए। शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था राज्य की ओर से ही होनी चाहिए। राजकुमार–राजकुमारी तथा दरिद्र के बच्चे को समान सुविधाएं दी जानी चाहिए। स्वामी जी125 वर्ष पूर्व अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा के पक्षधर थे। यह उनकी दूरदर्शिता का प्रमाण है। अगर उनकी बातों का अनुसरण किया गया होता तो आज कोई भी भारतीय अशिक्षित तथा चरित्रहीन न होता। लड़के तथा लड़कियों के विद्यालय तथा महाविद्यालय कम से कम पाँच कोस एक–दूसरे से दूर होने चाहिए। लड़कों के पुरुष तथा लड़कियों की महिलाएं ही शिक्षिका होनी चाहिए। वह सहशिक्षा के पक्षधर नहीं थे। आज व्यभिचार की जो सूचनाएं पढ़ने व सुनने को मिलती हैं, वे न मिलतीं। वह सन्तान बड़ी भाग्यशाली है जिसके माता–पिता धार्मिक व विद्वान् हों। अतः माता–पिता का सुयोग्य होना आवश्यक है। जो माता–पिता और आचार्य शिष्य को उचित शिक्षा व ताड़न करते हैं वे मानो अपनी

संतान एवं शिष्य को अपने हाथों अमृत पिला रहे हैं। इसके विपरीत जो लाड़न करते हैं वे विष पिला कर उनका जीवन नष्ट कर रहे हैं।

स्वामी दयानन्द पतंजलि महर्षि के अष्टांगयोग के पक्षधर थे। जैसे आग में तपाने से सुवर्णादि धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं और वे शुद्ध हो जाते हैं वैसे प्राणायाम करके मन–इन्द्रियाँ आदि के दोष क्षीण हो जाते हैं और वे निर्मल हो जाते हैं।

बच्चों को नैतिक शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिए। प्रतिदिन यज्ञ करने से लाभ तथा पंच महायज्ञों की उपयोगिता की जानकारी भी बच्चों को देनी चाहिए। आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है जैसे सागर में गोता लगा कर बहुमूल्य मोतियों का पाना। वह शिल्प कला आदि के पक्षधर थे। टेक्निकल शिक्षा के लिए वह बच्चों को जर्मनी भेजने को तैयार थे। भारत में भी शिल्प विद्यालय की स्थापना करवाई।

बच्चों को चरित्रवान बनाने के लिए माता–पिता तथा आचार्य सदा उन्हें सदुपदेश करें। धर्मयुक्त कार्यों को करने तथा दुष्ट कर्मों को त्यागने की शिक्षा देनी चाहिए।

काश! सभी भारतीयों को 'सत्यार्थप्रकाश' पढ़ने का

सौभाग्य प्राप्त हुआ होता तो आज स्वतंत्र भारत के प्रशासक व नागरिक चरित्रवान होते और जघन्य पाप न होते। प्रत्येक का जीवन सुखी व सुरक्षित होता।

यदि माता–पिता गुरु को ऐसा शिष्य जो टूटे–फूटे कटोरे की तरह हो उसे सौंपेंगे तो गुरु किस प्रकार उसके जीवन को सही दिशा कैसे दे सकेंगे। अतः संतानों को उत्तम विद्या–शिक्षा गुण–कर्म–स्वभाव रूपी आभूषण को धारण कराना माता–पिता–आचार्य तथा सम्बन्धियों का मुख्य कर्त्तव्य है।

यह सत्यार्थप्रकाश पढ़ते आज मुझे छः वर्ष के करीब हो गए। मैं नित्यप्रति इस पवित्र ग्रंथ को गवेषणापूर्वक पढ़ता हूँ। यदि कभी स्वास्थ्य ठीक न हो, तो केवल दर्शन कर लेता हूँ। पता नहीं स्वामी जी की लेखनी में क्या आकर्षण है। ***– ऐजाज अहमद गौरी सिद्धांतशास्त्री***

सत्यार्थप्रकाश स्वामी दयानन्द जी का ज्ञानकोष है। इसमें वैदिक धर्म का सर्वथा क्रियात्मक स्वरूप वर्णित है।

– ए. रंगास्वामी मुखर्जी

चतुर्थ समुल्लास

विवाह–गृहाश्रम

अपनी शिक्षा पूर्ण कर, वर्णानुकूल सुन्दर, उत्तम लक्षणों से युक्त कन्या से विवाह कर पुरुष व स्त्री गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें। लड़की का विवाह दूर देश में होने से हितकारी होता है, निकट होने में नहीं, इसीलिए कन्या का एक नाम दुहिता भी है।

निम्नलिखित दोष वाले इन कुलों में विवाह न करें–

1. सत्क्रिया–यज्ञादि उत्तम कर्मों से हीन
2. सत्पुरुषों से रहित
3. वेदाध्ययन से विमुख
4. शरीर पर बड़े–बड़े लोम वाले
5. बवासीर वाले
6. तपेदिक रोग वाले
7. जिस घर में दमा, खांसी आदि रोग हों
8. मिरगी हो
9. श्वेतकुष्ठ हो
10. गलित कुष्ठ हो

ये दस कुल चाहे धन–धान्य से पूर्ण और हाथी, घोड़े आदि से समृद्ध क्यों न हों, इनसे विवाह संबंध कभी नहीं करना चाहिए।

सोलह वर्ष से चौबीस वर्ष तक कन्या और पच्चीस वर्ष से लेकर अड़तालीस वर्ष तक पुरुष के लिए विवाह का उत्तम समय है। इससे कम आयु वाली स्त्री कभी गर्भ धारण न करें, क्योंकि गर्भ को पूर्णता प्राप्त नहीं होती। यदि सन्तान होती भी है तो रोगी तथा अल्पायु होती है। इसके विपरीत अधिक आयु वाले माता–पिता की संतान तीक्ष्ण बुद्धि वाली होती है।

लड़का–लड़की आजीवन कुंवारे रहें परन्तु विरुद्ध गुण–कर्म–स्वभाव वालों का परस्पर विवाह कभी नहीं होना चाहिए, न ही लड़का–लड़की की प्रसन्नता के बिना विवाह होना चाहिए। एक–दूसरे की खुशी से सम्पन्न विवाह में विरोध कम होता है और उत्तम संतान पैदा होती है। नहीं तो सदा क्लेश रहता है। जिस कुल में पत्नी अपने पति से प्रसन्न रहती है और पति अपनी पत्नी से प्रसन्न रहता है उसी कुल में सब सौभाग्य और ऐश्वर्य रहते हैं। जहां कलह है वहां दुर्भाग्य रहता है।

मनु के अनुसार, विवाह आठ प्रकार के होते हैं– ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच। इन सब विवाहों में ब्राह्म विवाह सर्वोत्कृष्ट माना जाता है, जिसमें ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्वान् वर एवं विदुषी कन्या का परस्पर प्रसन्नतापूर्वक विवाह सम्पन्न होता है।

गृहस्थ सुख का धाम तथा मोक्ष का द्वार माना जाता है। अगर मनुष्यों में विवाह का नियम न रहे तो– गृहस्थ के सब उत्तम व्यवहार नष्ट हो जाएं। कोई किसी की सेवा न करे और महाव्यभिचार बढ़ कर सब रोगी, निर्बल और अल्पायु होकर शीघ्र मर जाएं। कोई किसी से भय व लज्जा न करे, वृद्धावस्था में कोई किसी की सेवा न करे। वैसे तो सभी आश्रमों का अपना महत्त्व है, परन्तु गृहस्थ आश्रम के बिना किसी आश्रम का कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता। जैसे नदी और बड़े–बड़े नद तब तक भागते रहते हैं जब तक समुद्र को प्राप्त नहीं हो जाते।

गृहस्थ की सार्थकता तभी है जब गृहस्थ अपने कुछ निश्चित नियमों तथा कर्त्तव्यों का पालन करे।

गृहस्थों के कर्त्तव्य – 1. प्रातः जागरण, 2. धर्माचरण, 3. धर्म का स्वरूप, 4. आचार, महिमा–परस्पर व्यवहार आदि। गृहस्थ के कुछ अति आवश्यक कार्य हैं जिनका पालन

कर वह मोक्ष का राही बन सकता है। वह माता–पिता, सास–श्वसुर की सेवा करे। मित्र, आस–पड़ोस, राजा, विद्वान्, वैद्य और सत्पुरुषों से प्रीति रखे, जो दुष्ट तथा अधर्मी हैं उनकी उपेक्षा तथा उनको सुधारने का प्रयास करे। प्रेम से अपनी संतानों को विद्वान् और सुशिक्षित करने में धन आदि खर्च करे। धर्मयुक्त व्यवहार कर मोक्ष पथ का अनुगामी बने।

गृहस्थाश्रम में स्त्री का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैदिक धर्म में स्त्री पैर की जूती नहीं, अपितु सिर की पगड़ी है। जिस घर में स्त्री का सम्मान होता है, वहां दिव्य गुण और दिव्य पुरुषों का निवास होता है। जिस घर में स्त्री दुःखी रहती है, वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है। विशेष अवसरों पर भूषण, वस्त्र आदि से स्त्रियों का सत्कार हो। स्त्री के भी कुछ कर्त्तव्य हैं– वह सदा प्रसन्न रहे। गृह के सब कार्यों को चतुराई से करे, व्यर्थ में अति उदार न रहे।

स्त्री–पुरुष सदा प्रिय सत्य बोलें, काणे को काणा न कहें। बिना अपराध किसी से वैर न लें, किसी की निन्दा न करें। प्रतिदिन पंच महायज्ञों को अवश्य करें। दोनों समय सन्ध्या और हवन करें क्योंकि दिन और रात की दो सन्धियां होती हैं।

वर्ण व्यवस्था गुण–कर्म–स्वभाव के अनुसार होती है, जन्म से नहीं। शूद्र कुल में उत्पन्न होकर कोई भी व्यक्ति क्षत्रिय, वैश्य और ब्राह्मण हो सकता है। रज–वीर्य के सहयोग से कोई ब्राह्मण शरीर नहीं बनता। उत्तम गुण–कर्म–स्वभाव वाला व्यक्ति चाहे किसी भी वर्ण में जन्मा हो वह ब्राह्मण होता है। इसके विपरीत जो मूर्ख है वह शूद्र है भले ही उसका जन्म ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण में हुआ हो। गुण–कर्म–स्वभावानुसार वर्ण व्यवस्था होने से सब वर्ण वाले अपने–अपने गुण–कर्म व स्वभाव से युक्त होकर शुद्धता से रहते हैं। वर्ण व्यवस्था के ठीक पालन से ब्राह्मण कुल में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं रह सकेगा, जो क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के गुण–कर्म–स्वभाव वाला हो। ऐसी व्यवस्था रखने से मनुष्य उन्नतिशील होता है, क्योंकि उत्तम वर्ण वाले को भय रहेगा कि यदि हमारी सन्तान मूर्खतादि दोष युक्त होगी, तो वह शूद्र हो जाएगी। संतान भी डरती रहेगी। यदि हम उत्तम चाल–चलन वाले और विद्यायुक्त न होंगे, तो हमें शूद्र होना पड़ेगा। गुण–कर्म–स्वभावानुसार वर्ण व्यवस्था होने से निम्न वर्ण का व्यक्ति अच्छे कर्मो को कर उत्तम वर्णस्थ होने के लिए उत्साहित रहता है।

पंचम समुल्लास

वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम–विधि

सब मनुष्यों को उचित है कि वे ब्रह्मचर्याश्रम का काल पूर्ण हो जाने के बाद गृहस्थ बनें। गृहस्थाश्रम का समय पूरा हो जाने पर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करें। वानप्रस्थ आश्रम का समय पूर्ण हो जाये तो संन्यास आश्रम में प्रवेश करें और संन्यासी बनकर सारे जगत् का कल्याण करने में लग जाएं। वानप्रस्थ आश्रम के बारे में बताया गया है कि जब गृहस्थ देखे कि उसके सिर के बाल सफेद हो गये हैं, त्वचा ढीली हो गई है, पोते–पोतियां हो गये हैं, तो वह गृहस्थ का सारा उत्तरदायित्व पुत्र–पुत्रवधू को सौंप कर वानप्रस्थी हो जाए। वह वन में चला जाए। परन्तु आज यह संभव नहीं है। हां, जहां तक संभव हो वह शहर की भीड़भाड़ से दूर रहे।

वानप्रस्थी नित्य आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय करें, इन्द्रियों को जीतें, सबसे मित्रता का व्यवहार करें, विद्या दान करें, पर किसी से कुछ न लेवें, शारीरिक सुखों को सीमित रखें। वे

अपनों और पदार्थों के प्रति मोह–ममता का त्याग करें। संयमी जीवन व्यतीत करें।

जब वानप्रस्थ अनुभव करे कि उसे पूर्ण वैराग्य हो गया है तो वह उसी दिन संन्यास ले लेवे। परमेश्वर की प्राप्ति के लिए यज्ञ कर के लोकैषणा, पुत्रैषणा और वित्तैषणा को छोड़, ब्रह्मज्ञान की अग्नि को हृदय में धारण कर ब्रह्मवित् ब्राह्मण संन्यासी हो जाए।

जैसे शरीर में सिर की आवश्यकता है, वैसे ही आश्रमों में संन्यास आश्रम की आवश्यकता है। इसके बिना विद्या और धर्म आदि की वृद्धि नहीं होती। संन्यासी सर्वतोभावेन मुक्त होकर जगत् का उपकार करता है।

संन्यासाश्रमियों से राज्य व प्रजा का भला होता है, वैदिक संस्कृति का प्रचार होता है, जिससे श्रेष्ठ मानव जीवन का उत्थान होता है। जन–जन आर्य बन राज्य को आर्यावर्त्त बनाते हैं।

ब्रह्मचारी से संन्यासी बना व्यक्ति देश, समाज व राष्ट्र का अधिक भला कर सकता है। प्राचीन काल में संन्यासी उस राज्य का आतिथ्य स्वीकार नहीं करते थे, अन्न व जल ग्रहण नहीं करते थे, जहां एक भी अपराध, पाप व अन्याय

होता था। आज भगवा वस्त्र धारण कर हाथ में कमण्डल लेकर हजारों साधु जिनमें से अधिकांश दुराचारी, निठल्ले, दुर्व्यसनी भी होते हैं, वे मानव जाति का उपकार नहीं, बल्कि अन्धविश्वास फैला कर देश और समाज का विनाश कर रहे हैं। जो स्वयं धर्म मार्ग पर चलकर संसार को धर्म मार्ग पर चलाते हैं तथा लोक–परलोक में सुख का भोग कराते हैं वे ही धार्मिक जन संन्यासी और महात्मा हैं।

आज ऐसे संन्यासियों की महती आवश्यकता है क्योंकि ऐसे निःस्वार्थी साधु ही मानव को सही राह दिखा कर, धधकते विश्व को शांति व आनन्द दिला सकते हैं, हिंसा मुक्त कर सकते हैं।

ऋषि दयानन्द ने उन द्वारों की कुंजी प्राप्त की जो युगों से बन्द थे और उनसे पटे हुए झरनों का मुख खोल दिया।

– अरविन्द घोष

षष्ठ समुल्लास

राजा–प्रजाधर्म विषय

क्षत्रिय का धर्म है कि सुशिक्षित होकर न्यायपूर्वक प्रजा की रक्षा करे और राज्य का पालन करे। राज्य के संचालन तथा प्रजा की रक्षा के लिए एक राजा तथा उसकी सहायता के लिए विद्वानों की 1. विद्यार्य सभा, 2. धर्मार्य सभा, 3. राजार्य सभा होनी चाहिए। राजा पूर्ण स्वतंत्र न हो। स्वतंत्र शासक प्रजा का नाशक तथा अत्याचारी होता है।

राज्य के सभी विद्वान् मिलकर राजा का निर्वाचन करें। अगर वह अयोग्य साबित हो तो उसे प्रजा को हटाने का भी अधिकार है। राजा इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा आदि के समान गुणों से परिपूर्ण होना चाहिए।

सभापति तथा सभासद विद्वान् जितेन्द्रिय तथा सर्वोत्तम गुण–कर्म–स्वभाव से युक्त महापुरुष होने चाहिए। सभासदों की संख्या दस या तीन भी हो सकती है। दस में से चार चारों वेदों के ज्ञाता, न्यायशास्त्र का ज्ञाता, निरुक्त ज्ञाता, धर्मशास्त्रवेत्ता, ब्रह्मचारियों, गृहस्थियों तथा वानप्रस्थियों का एक–एक प्रतिनिधि होना चाहिए।

राष्ट्र के नियमों का निर्माण विद्वानों की सम्मति से हो, न कि बहुमत से। द्विजों में उत्तम अकेला विद्वान् संन्यासी अज्ञानी करोड़ों से श्रेष्ठ है। मूर्खों की बातों को कभी नहीं मानना चाहिए।

राजा का प्रजा अनुसरण करती है, अतः राजा आदर्श सर्वगुण सम्पन्न वीर, त्यागी तथा दूरदर्शी होना चाहिए। अकेले राजा की बुद्धि पर राजकार्य को छोड़ देना उचित नहीं है, अतः राजा कुलीन, उत्तम, धार्मिक तथा चतुर आठ मंत्रियों की सहायता से राजकार्य को चलाए।

राजा राज्य के योग्यतम व्यक्तियों को दूत बनाए। राजदूत में फूट में मेल कराने तथा मिले हुए दुष्टों को तोड़–फोड़ करने का भी गुण होना चाहिए। कोश तथा दण्ड कार्य राजा के स्वयं के पास होना चाहिए। जोंक, भ्रमर तथा बछड़ा जैसे थोड़ा–थोड़ा योग्य पदार्थ लेते हैं वैसे राजा भी प्रजा से थोड़ा कर लेवे ताकि प्रजा धन रहित होकर दुःख न पाए। राजा कर के उतने भाग का भोग करे जितना सभा उसके लिए नियत करे।

शस्त्र, सेना और दुर्ग व्यवस्था अति उत्तम होनी चाहिए। शत्रुओं को पराजित करने के लिए सभी प्रकार के शस्त्रास्त्र

होने चाहिए। राष्ट्र की सेना प्रशंसनीय होनी चाहिए। राजा प्रतिदिन प्रातः सेना अध्यक्षों से मिले तथा उनका उत्साहवर्द्धन करे। वह सेना संबंधी उनकी सभी आवश्यकताओं को पूरा करे। युद्ध राज्य के लिए अनिवार्य है। राजा अपने क्षत्रिय धर्म को याद रखे। जिस प्रकार अपनी विजय हो, वैसा ही करे। मूर्खता तथा क्रोध के कारण स्वयं को नष्ट–भ्रष्ट न करे।

राजा हारे हुए सैनिकों के साथ अच्छा व्यवहार करे। हारे राजा को बन्दीगृह में रखकर उसका सत्कार करे तथा उसे चिढ़ाये नहीं कि हमने तुम्हें परजित किया है। युद्ध में छल–छद्म भी आवश्यक है। महर्षि मनु लिखते हैं, जैसे बगुला ध्यानावस्थित होकर मछली को पकड़ने के लिए सजग रहता है, वैसे ही राजा अर्थसंग्रह का विचार करे, सिंह के समान पराक्रम दिखाये, चीते के समान छिपकर शत्रुओं को पकड़े, समीप में आये बलवान शत्रु से खरगोश की तरह दूर भाग जाए, बाद में छल से उसे पकड़ ले।

राजा प्रतिदिन रात्रि की पिछली प्रहर उठ जाए, दैनिकचर्या से निवृत्त हो प्रभु चिंतन तथा यज्ञ आदि करे। धार्मिक व्यक्तियों का सत्कार कर सभा में जाए। आये हुए प्रजाजनों को संतुष्ट कर मंत्रियों से मंत्रणा करे तथा उसे गुप्त रखे। इसके बाद

भोजन करे।

किसी राज्य का प्रतिबिम्ब उसकी न्याय व्यवस्था होती है। इसके लिए मुख्य न्यायाधीश सब विद्याओं से पूर्ण विद्वान् होना चाहिए। प्रजा में अठारह कारणों से विवाद होते हैं। इन्हीं विवादों का पक्षपात रहित होकर न्याय करना ही उत्तम न्याय व्यवस्था है। न्याय व्यवस्था में धार्मिक, विद्वान्, निष्कपट, निर्लोभी और सत्यवादियों को साक्षी मानना चाहिए, विपरीत को नहीं। व्यभिचार आदि अपराधों में साक्षी की आवश्यकता नहीं क्योंकि ये काम गुप्त होते हैं।

साक्षी सत्य बोले तो उसे कोई दण्ड नहीं देना चाहिए। अगर असत्य बोले तो उसकी जिह्वा का छेदन करा देना चाहिए। वकील साक्षी को स्मरण करा दे कि परमात्मा तेरे हृदय में स्थित है। उससे डर कर तू सदा सत्य बोला कर। झूठे साक्षियों विशेषकर ऐसे धनिक झूठे साक्षियों से दुगना–चौगुना धन लेना चाहिए।

अपराधों को रोकने के लिए उचित दण्ड व्यवस्था अति आवश्यक है। वस्तुतः दण्ड ही राजा है। जो राजा दण्डनीय को दण्ड नहीं देता और अदण्डनीय को दण्ड देता है वह जीता हुआ बड़ी निन्दा को और मरने के बाद बड़े दुःख को

प्राप्त होता है।

अपराधी जिस–जिस अंग से विरुद्ध चेष्टा करता है उसके उस–उस अंग को मनुष्यों की शिक्षा देने के लिए उसे देना चाहिए, चाहे वह कितना ही अपना व प्यारा क्यों न हो। न्याय–आसन पर बैठ कर किसी का पक्षपात नहीं करना चाहिए। जो जितनी ऊंची स्थिति पर हो अपराध करने पर उसे उतना ही अधिक दण्ड मिलना चाहिए। जैसे जिस अपराध के लिए साधारण मनुष्य पर एक पैसा दण्ड हो तो राजा को हजार गुणा, मंत्री को आठ सौ गुणा और चपरासी को आठ गुणा से कम न हो। राजा, बलात्कारी तथा डाकुओं को दण्ड देने में एक क्षण भी न लगाए। यदि कोई स्त्री बहकावे में आकर पति को छोड़ कर व्यभिचार करे या कोई पुरुष ऐसा करता है तो राजा उसे जनसाधारण के सामने कठोरतम दण्ड दे।

कठोरतम दण्ड को कड़ा नहीं समझना चाहिए क्योंकि एक व्यक्ति को ऐसा दण्ड देने से सब लोग, बुरे काम करने से बचे रहेंगे। अन्यथा दुष्ट कर्म बहुत बढ़ जाएंगे।

राजा और सभापति इस बात का सदा ध्यान रखें कि बाल्यावस्था में विवाह न हो। युवावस्था में भी बिना परस्पर

प्रसन्नता के विवाह न हो। ब्रह्मचर्य पालन कराने में विशेष ध्यान रखे। व्यभिचार और बहुविवाह को बंद करे। जिससे शरीर और आत्मा में पूर्ण बल रहे। आज इसके विपरीत चलने से व्यभिचार, हत्या, अपहरण जैसे भंयकर काले कारनामे प्रतिदिन हो रहे हैं जिन्हें पढ़ने–सुनने में किसी को आश्चर्य या दु:ख नहीं होता।

राजपुरुष प्रतिदिन यही प्रार्थना करें– हे परमात्मन्! हमारा राजा और हम आपके सेवक हैं। कृपा करके आप अपनी सृष्टि में हमको राज्याधिकारी करें। आप हमें सत्य और न्याय के पथ पर चलने के लिए प्रेरित करें।

मैंने भारत में आकर सच्चे हिन्दू धर्म का परिचय सत्यार्थप्रकाश के स्वाध्याय में पाया।

– *पादरी सी.एफ. एन्ड्रयूज*

मेरा सादर प्रणाम उस गुरु दयानन्द को है, जिसका उद्देश्य भारतवर्ष को अविद्या, आलस्य और प्राचीन, ऐतिहासिक तत्त्व के अज्ञान से मुक्त कर सत्य और पवित्रता की जागृति में लाना था। **– *रवीन्द्रनाथ ठाकुर***

सप्तम समुल्लास

ईश्वर और वेद–विषय

ईश्वर दिव्य कर्म स्वभाव वाला और विद्यायुक्त है। वही सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने वाला न्यायाधीश एवं अधिष्ठाता है। ईश्वर वेदों का प्रकाशक, कर्मफल का दाता, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, न्यायकारी, दयालु तथा सर्वगुण सम्पन्न तथा पूर्ण सामर्थ्यवान है। उसको जानकर मनुष्य सुखी होते हैं। जो नहीं जानते वे दुःख सागर में डूबे रहते हैं। उस प्रभु की मित्रता से किसी का विनाश नहीं होता।

ईश्वर एक है उसका मुख्य नाम 'ओ३म्' है। गुण–कर्म स्वभाव के आधार पर उसके अनन्त नाम हैं। वह निराकार है। वह कण–कण में विद्यमान है। ईश्वर न कभी उत्पन्न हुआ है और न कभी उसकी मृत्यु होगी। वह अनादि और अनन्त है, नित्य है और सत् है। जीव और प्रकृति भी नित्य है। ईश्वर सत्–चित्–अनादि है। जीव सत् और चित् है। प्रकृति मात्र सत् (नित्य) है। उस परमपिता परमात्मा की स्तुति– प्रार्थना तथा उपासना करनी चाहिए। स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव को सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना

उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होता है तथा उसी के अनुरूप आचरण करना भी अनिवार्य है। इसी मार्ग पर चलकर मनुष्य अपने परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। अष्टांग योग द्वारा ही ईश्वर के समीपस्थ को प्राप्त करना संभव है तथा इससे सब दोष, दुःख छूट कर परमेश्वर के गुण–कर्म–स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण–कर्म–स्वभाव भी पवित्र हो जाते हैं। आत्मबल इतना बढ़ जाता है कि वह पर्वत के समान दुःख आने पर भी नहीं घबराता। जो परमेश्वर की स्तुति–प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न तथा मूर्ख है।

कुछ मतों के अनुयायियों का मानना है कि ईश्वर अपने भक्तों के अपराध क्षमा कर देता है। ऐसा कहना सत्य नहीं है क्योंकि यदि परमात्मा पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाएगा। सब मनुष्य महापापी हो जाएंगे। पाप क्षमा हो जाने की आशा से निर्भय होकर पाप करेंगे। सब कर्मों का फल देना ही ईश्वर का काम है, क्षमा करना नहीं। मनुष्य कर्म करने में पूर्ण स्वतंत्र है परन्तु फल पाने में परतंत्र है। जीव ही कर्म करता है। जीव ही फल पाता है। जीव और ईश्वर का व्याप्य–व्यापक सम्बद्ध है। ईश्वर सगुण और निर्गुण भी है। अतः सब मनुष्यों को उचित है कि वे सबको छोड़कर उस एक

ही निराकार ईश्वर की स्तुति–प्रार्थना–उपासना करें तथा उसी के अनुरूप आचरण भी करें।

वेद:– परमपिता परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है जिससे मनुष्य अविद्या–अंधकार और भ्रमजाल से छूट कर विद्या–विज्ञान रूपी सूर्य को प्राप्त कर अति आनन्द से रहें। विद्या तथा सुखों की वृद्धि करते जाएं।

वेद पुस्तक का ही नाम नहीं, अपितु ज्ञान का नाम है। ईश्वर नित्य होने से उसका ज्ञान (वेद) भी नित्य है। मनुष्य की उत्पत्ति के साथ ही परमात्मा ने चार ऋषियों के हृदयों में चारों वेदों को प्रकाशित कर दिया क्योंकि वे ही चार ऋषि सब जीवों से अधिक पवित्रात्मा थे। अग्नि ऋषि के हृदय में ऋग्वेद, वायु ऋषि के हृदय में यजुर्वेद, आदित्य और अङ्गिरा ऋषियों के हृदयों में क्रमशः सामवेद तथा अथर्ववेद का प्रकाश किया। कुछ काल बाद ऋषि–मुनियों ने वेदमंत्र के अर्थ को जानने के लिए चिंतन किया, समाधि लगाकर मन्त्रों का साक्षात्कार किया। जिस ऋषि को जिस मंत्र का प्रथम बार दर्शन (साक्षात्कार) हुआ उस मंत्र के साथ उस ऋषि का नाम जोड़ दिया गया ताकि यह स्मरण रहे कि अमुक मन्त्र का साक्षात्कार अमुक ऋषि ने किया था। इसके बाद ऋषि–मुनियों ने वेदमंत्रों का व्याख्यान करने वाले ब्राह्मण ग्रन्थ बनाए।

अष्टम समुल्लास

सृष्टि–उत्पत्ति–स्थिति तथा प्रलय

सृष्टि–उत्पत्ति से पूर्व यह जगत् अंधकार से आवृत्त था। उस समय कोई भी प्राणी नहीं था। ईश्वर में ज्ञान, बल और क्रियाएं तीनों स्वाभाविक गुण हैं। इनकी सार्थकता तभी है जब सृष्टि का निर्माण हो। ईश्वर की सृष्टि के निर्माण का उद्देश्य जीवों को कर्मों का फल देना तथा मोक्ष प्राप्ति का अवसर प्रदान करना है। अतः सृष्टि का रचनाकार वह परम पिता परमात्मा ही है। इसका उपादान कारण 'प्रकृति' और साधारण कारण 'जीव' है। ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों ही अनादि हैं, इन्हें किसी ने उत्पन्न नहीं किया है।

कुछ लोगों का कहना है कि बीज पहले या पेड़। बीज पहले क्योंकि बीज कारण है। कारण से ही कार्य (वृक्ष) की उत्पत्ति होती है। जैसे जिह्वा के बिना बोलना, आंखों के बिना देखना संभव नहीं। जैनमत के अनुसार– अनादि ईश्वर कोई नहीं है, किंतु जीव ही योगाभ्यास करते–करते परमेश्वर हो जाता है। पर यह मत ठीक नहीं। परमात्मा ने प्राणियों के शरीर की ज्ञानपूर्वक कैसी अद्‌भुत रचना की है जिसे देख

विद्वान् भी दंग रह जाते हैं। पृथिवी के अन्दर–बाहर नाना प्रकार की धातु, वनस्पतियों को उत्पन्न करना, सूर्य–चन्द्रादि को नियमित रूप से चलाना, सबकी व्यवस्था करना आदि कार्यों को सर्वशक्तिमान ईश्वर के सिवाय कोई दूसरा नहीं कर सकता है। जीव कभी ईश्वर नहीं हो सकता। ईश्वर के नियम सत्य एवं पूर्ण हैं। ईश्वरकृत सृष्टि के नियमों को बदलने वाला आज तक न कोई हुआ है और न होगा। परमात्मा पूर्ण है। उसका ज्ञान भी पूर्ण है और उसकी सृष्टि भी पूर्ण है। यह सृष्टि सदा एक–सी रही है और एक–सी रहेगी।

पहले पृथिवी आदि की रचना हुई, बाद में मनुष्य आदि की। यदि पृथिवी न होती तो मनुष्य कहाँ उत्पन्न होता? उसका पालन कैसे होता? सृष्टि के आदि में परमात्मा ने उन मनुष्यों को जन्म दिया जिन–जिन जीवों के कर्म अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न होने के थे। सृष्टि पीछे प्रलय, प्रलय पीछे सृष्टि– यह क्रम अनादिकाल से चला आ रहा है और चलता रहेगा। इसका न कोई आदि और न अंत है।

मनुष्य की आदि सृष्टि त्रिविष्टप अर्थात् तिब्बत में हुई। आदि सृष्टि में एक ही मनुष्य जाति थी। बाद में जो श्रेष्ठ थे वह आर्य और जो मूर्ख तथा दुष्ट थे वे दस्यु या डाकू कहलाए।

जब दोनों में लड़ाई–झगड़ा रहने लगा तब आर्य लोग भारत भूमि को भूगोल में सर्वोत्तम जानकर यहां आ बसे इसलिए इस देश का नाम आर्यावर्त्त पड़ा। आर्यावर्त्त की सीमाएं मनुस्मृति के अनुसार, उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में अटक नदी, पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी है। हिमालय की मध्य रेखा से दक्षिण और रामेश्वर पर्यन्त सम्पूर्ण भाग आर्यावर्त्त था। इससे पूर्व इस भू–भाग पर न तो कोई बसता था, न ही इसका कोई नाम था। बाद में प्रतापी राजा भरत के नाम से इस देश का नाम भारत हुआ। ईरान सहित अन्य देश इन्हीं आर्यों द्वारा बसाए गए।

सृष्टि का काल 4 अरब 32 करोड़ वर्ष का होता है और प्रलय काल भी इतना ही होता है। सृष्टि का अंतिम युग कलयुग है, जो चल रहा है। इसके बाद पुनः सतयुग आएगा। इसी प्रकार यह क्रम चलता रहेगा। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इसी सृष्टि संवत् को मान्यता दी है।

यजुर्वेद के अनुसार, भूलोक जल सहित सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करते हैं (चन्द्रमा) भूमि के चारों ओर घूमता है। सूर्य अपनी परिधि में घूमता रहता है। पृथ्वी न तो शेषनाग के फन पर, न ही बैल के सींगों पर स्थित है क्योंकि इनका जन्म

तो पृथिवी के बाद हुआ है। पृथिवी का आधार तो वही ईश्वर है प्रलय में जब कुछ नहीं रहता तो भी ईश्वर शेष रहता है। सूर्य का प्रकाश पृथिवी को थामे है परन्तु सूर्य को तो ईश्वर ने थामा हुआ है।

एक समय था जब समस्त भू–मण्डल में आर्यों का चक्रवर्ती राज्य था परन्तु दुर्भाग्य से आर्यों के आलस्य–प्रमाद तथा परस्पर विरोध के कारण देश पराधीन हुआ और अनेक खण्डों में विभाजित हो गया। स्वराज्य तो प्राप्त हो गया परन्तु उसे सुराज्य नहीं बना सके।

स्वामी जी लिखते हैं–"विदेशी शासन कितना अच्छा क्यों न हो, पर वह स्वराज्य जैसा नहीं हो सकता।" यह एक जुझारू योद्धा की वाणी थी।

ऋषि दयानन्द ने अपने देशवासियों तथा समस्त विश्व को सत्यार्थप्रकाश के रूप में जो अविनश्वर वसीयत दी है उसमें ऐसे पुनर्गठित समाज का रूप उपस्थित किया है जिससे स्वतंत्र भारत वर्तमान परिस्थितियों में स्वकीय संस्कृति तथा सभ्यता की अमूल्य परंपराओं का निर्माण कर सकता है। *– पं. श्यामाप्रसाद मुखर्जी*

नवम समुल्लास

विद्या–अविद्या, बन्ध–मोक्ष विषय

जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ–साथ जानता है वह कर्मोपासना से मृत्यु से तर कर यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। योगदर्शन के अनुसार, अनित्य को नित्य, अपवित्र को पवित्र, दुःख को सुख और अनात्मा को आत्मा समझना ही अविद्या है। अनित्य में अनित्य, नित्य में नित्य, अपवित्र में अपवित्र, पवित्र में पवित्र, दुःख में दुःख, सुख में सुख, अनात्मा में अनात्मा और आत्मा में आत्मा का ज्ञान होना विद्या है।

पवित्र कर्म, पवित्र उपासना तथा पवित्र ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्ष का काल पूर्ण होने के पश्चात् 'जीव' पुनः धरती पर जन्म लेता है। 36 हजार बार सृष्टि और प्रलय हो उतने समय तक जीवात्मा परमधाम का आनन्द प्राप्त करता है। जो एक बहुत लम्बी अवधि है। जो व्यक्ति (जीव) अधर्म तथा अज्ञान में फंसा रहता है वह बद्ध है। वह जन्म–मरण के चक्र में फंसा रहता है।

परमात्मा जीव को उसके कर्मानुसार ही फल देता है। प्राणी पूर्वजन्म के कर्मानुसार वर्त्तमान और वर्त्तमान तथा पूर्वजन्मों के कर्मानुसार भविष्य में देह धारण करता है अर्थात् उसे जन्म मिलता है। (1) अविद्या (2) अस्मिता (3) राग (4) द्वेष (5) अभिनिवेश ये पांच क्लेश हैं। योगाभ्यास और विज्ञान द्वारा इन पांचों क्लेशों को छुड़ाकर ब्रह्म को प्राप्त कर परमानन्द को भोगना चाहिए। यही मानव जीवन का लक्ष्य है।

परमात्मा जीवों को उसके कर्मानुसार फल देता है। जीव कर्म करने में स्वतंत्र परन्तु फल पाने में परतंत्र है। ऐसे ही ईश्वर फल देने में परतंत्र है। जब तब कोई जीव कैसा भी अच्छा या बुरा कर्म नहीं करता तब तक ईश्वर अपनी स्वेच्छा से किसी को फल नहीं देता है।

जब कोई उलझन आती है तभी सत्यार्थप्रकाश का पाठ करके आसानी से सुलझा लेता हूँ।

– लाला लाजपत राय

दशम-समुल्लास

आचार, अनाचार, भक्ष्य और अभक्ष्य

धर्मयुक्त कामों का आचरण, सुशीलता सत्पुरुषों का संग और सद्विद्या के ग्रहण में रुचि आदि आचार और इनसे विपरीत अनाचार कहलाता है। जिसको आत्मा से सत्य कर्त्तव्य जाने, वही धर्म माननीय और करणीय है। जब कोई झूठ, चोरी आदि की इच्छा करता है तभी उसके आत्मा में भय, शंका, लज्जा अवश्य उत्पन्न होती है। इसलिए वह कर्म करने योग्य नहीं है, वह अनाचार है। जो व्यक्ति वेदों के विरुद्ध कार्य कर उनका अपमान करता है। उसे जाति से बाहर कर देना चाहिए। जो वेद की निन्दा करता है वह नास्तिक कहलाता है।

सभी बच्चों का मुण्डन कराना अनिवार्य है। बड़े बालों में गर्मी के कारण बुद्धि कम हो जाती है और दाढ़ी-मूंछ से खान-पान अच्छी तरह से नहीं होता और बालों में उच्छिष्ट रह जाता है। मनुष्य को जितेन्द्रिय होना चाहिए। पांच कर्मेन्द्रियाँ, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और ग्यारहवें मन को वश में करके सदा धर्म पर चलाए। मनुष्य को सदा सच बोलना व

सदाचरण करना चाहिए। विद्या से मनुष्य वृद्ध या बालक बनता है। सफेद बालों से कोई वृद्ध नहीं होता जो विद्या–विज्ञान में अधिक होता है वही वृद्ध है।

जो सत्योपदेश से धर्म की वृद्धि और अधर्म का नाश करते हैं वे पुरुष धन्य हैं। सामाजिक मधुरता के लिए शिष्टाचार अति आवश्यक है। माता–पिता–आचार्य तथा अतिथि की सेवा करना ही देव पूजा है। ये जीवित देव माने जाते हैं। सदा श्रेष्ठ एवं विद्वान् पुरुषों का संग करना चाहिए।

पौराणिकों के अनुसार विदेशों में जाने से धर्म नष्ट हो जाता है। यह सत्य नहीं है। महाभारत तथा अन्य ग्रन्थों में अनेक उदाहरण मिलते हैं कि प्राचीन काल में लोग विदेशों में जाकर व्यापार करते थे। वहां भ्रमण करने जाते थे। इसके साथ ही यहां के लोग विदेशों में विवाह आदि सम्बन्ध बनाते थे।

कुछ लोगों के अनुसार भोजन चौके में ही खाना चाहिए। ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है जहां भोजन करें वह स्थान साफ–सुथरा होना चाहिए। पाखण्डी लोग जल में बने खाने को कच्चा तथा दूध–घी में बने खाने को पक्का खाना मानते हैं अर्थात् सखरी–निखरी बोलते हैं। यह मात्र पाखण्ड है।

भोजन शुद्ध, साफ, सुथरा, सुपाच्य तथा स्वादिष्ट बना होना चाहिए।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यऔर शूद्र अपने–अपने कर्तव्यों को करें। शूद्र भोजन बनाये। वह प्रतिदिन नहाये, उसके कपड़े साफ हों। वह मुंह पर कपड़ा लगाकर भोजन बनाए।

एक थाली में मिलकर भोजन नहीं खाना चाहिए। पत्नी–पति का, शिष्य गुरु का जूठा भी नहीं खाए। उनको खिलाने के बाद में स्वयं खाए। जूठा खाना स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है।

उपयोगी पशुओं की कभी हत्या नहीं करनी चाहिए। राजपुरुषों का कर्त्तव्य है कि हानिकारक एवं हिंसक पशुओं का वध करवा दें। उनका मांस कुत्तों को खिला दें या किसी मांसाहारी अन्य को परन्तु मनुष्य को नहीं खिलाना चाहिए अन्यथा उसका स्वभाव भी हिंसक हो जाएगा।

मैंने सत्यार्थप्रकाश को पढ़ा। मुझे इसमें अपनी आत्मा के दर्शन होते हैं। मैं अनुभव करता हूँ कि महर्षि दयानन्द के साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध है। – साधु टी.एल.वासवानी

एकादश तथा द्वादश समुल्लास

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के अन्तिम चार समुल्लासों में भारत के विभिन्न मतमतान्तरों, बाइबल और कुरान की तर्कसंगत समीक्षा की है। जो मानव हित में था उसका मण्डन किया जो विपरीत था उसका खण्डन किया।

महर्षि के अनुसार, सृष्टि के आदिकाल में ईश्वर ने चार ऋषियों के हृदयों में वेदों का प्रकाश किया। उस समय वैदिक धर्म के अतिरिक्त कोई अन्य मत नहीं था। करोड़ों वर्षों तक ऋषियों ने श्रुति परम्परा के माध्यम से इसे जीवित रखा परन्तु महाभारत के युद्ध में विद्वान्, राजा–महाराजा और ऋषि सब मारे गये। सांख्यदर्शन के सूत्र (2) को उद्धृत कर ऋषि लिखते हैं कि उत्तम श्रोता तथा वक्ता के अभाव में पाखण्ड फैलता है। ऐसा ही उस समय हुआ।

भारत में सबसे पहले वाममार्ग मत का प्रारम्भ हुआ जिसने मांस, मछली खाना, शराब पीना तथा मैथुन को मुक्ति का मार्ग बताया। गोवध, अश्ववध तथा नरबलि को स्वर्ग प्राप्ति का साधन कहा। कितनी तर्क विहीन बातें हैं!

जैनमत ने यज्ञ, वेदों के पठन–पाठन तथा ईश्वर उपासना के स्थान पर मूर्तिपूजा को जन्म दिया। स्वामी जी ने प्रमाण

देकर मूर्तिपूजा से होने वाली सोलह हानियों का सत्यार्थप्रकाश में वर्णन किया है।

शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रचार किया। इसके बाद शैव–शाक्त, वैष्णव आदि सम्प्रदाय प्रचलित हुए। जिन्होंने नाना प्रकार के अन्धविश्वासों को जन्म दिया। जैसे– तीर्थयात्रा तथा शिव, विष्णु आदि की मूर्ति के दर्शन करने से पाप क्षमा हो जाते हैं। स्वामी जी ने इन सबका खण्डन करते हुए लिखा है– ***"अगर यह सत्य है तो पाप करने से कोई डरेगा नहीं, पाप को बढ़ावा मिलेगा, समाज दूषित होगा।"*** महर्षि ने अपने तर्कों से सिद्ध कर दिया कि कर्मों का फल देना सर्वशक्तिमान ईश्वर का अटल नियम है।

हमारे तीर्थ हरिद्वार, मथुरा, काशी आदि नहीं, बल्कि वेद आदि सत्यग्रन्थों का पढ़ना–पढ़ाना, परोपकार, सत्यभाषण, जीवित माता–पिता की सेवा, परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करना आदि दुःखों से छुटकारा दिलवाने वाले तीर्थ हैं। स्वामी जी ने लालची, लोभी, चालाक, ठग वाले गुरुओं की निन्दा करते हुए व्यास, शुकदेव, जैमिनी की प्रशंसा करते हुए सच्चे गुरुओं का ज्ञान कराया है। वह गुरु के पक्ष में थे, गुरुडम के नहीं। इसी प्रकार स्वामी दयानन्द जी

ने दान के लिए सुपात्र–कुपात्र, व्रत–उपवास, राम–कृष्ण आदि के सही स्वरूप को जन साधारण के सामने रखा।

देखते ही देखते असंख्य मत–मजहब पैदा हो गये, लोग जैन, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम आदि मतों में विभक्त हो गये। एकादश समुल्लास में स्वामी जी ने बताया कि धर्म एक है वह सत्य सनातन वैदिक धर्म जिसके आधार मात्र ईश्वरकृत वेद हैं। स्वामी जी लिखते हैं– ''यदि चार्वाक आदि ने वेद पढ़े होते तो वह वेदों की निन्दा कभी नहीं करते।" उव्वट, महीधर आदि टीकाकारों ने वेदमन्त्रों का अर्थ करते हुए उनका अनर्थ कर दिया। मृतक माता–पिता के श्राद्धों का भी उन्होंने खण्डन किया है।

द्वादश समुल्लास में खण्डन करते हुए जैनमत की विशेषताओं का भी वर्णन किया है। जैसे– अहिंसा, स्वच्छ जल पीना, दया करना और रात्रि में भोजन न करना आदि आदि।

अन्त में वह ईश्वर की अनिवार्यता के बारे में लिखते हैं– ***"जैसे बिना राजा के डाकू, लम्पट चोर, दुष्ट मनुष्य स्वयं फांसी व कारावास में नहीं जाते किन्तु राजा दण्ड देता है। ऐसे ही कोई भी जीव अपने दुष्ट कर्मों के फल नहीं भोगना चाहता परन्तु सर्वशक्तिमान ईश्वर अपनी न्याय व्यवस्था के अनुसार सभी को स्वकर्मानुसार यथायोग्य दण्ड देता है।"***

त्रयोदश तथा चतुर्दश समुल्लास

त्रयोदश तथा चतुर्दश समुल्लास में स्वामी जी ने ईसाई मत, बाइबल, इस्लाम, कुरान की समीक्षा की है। कुछ आलोचकों का कथन है कि स्वामी जी ने इन दोनों विदेशी मतों की आलोचना क्यों की? इसका उत्तर यह है कि वह महामानव थे और 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य था। धर्म के नाम पर जो एक–दूसरे का खून बहाते, जैसे–कैथोलिक तथा प्रोटैस्टट, शिया तथा सुन्नी, हिन्दू तथा मुसलमान सदा से ही धर्म के नाम पर खून बहाते रहे हैं। वे शोषण करते थे तथा अन्धविश्वासों के माध्यम से निरीह लोगों को अविद्या के गलियारों में भटकाते थे। यह सब देखकर महर्षि दयानन्द को असीम पीड़ा होती थी और मानव जाति के दुःखों से पीड़ित होकर रात में रोते भी थे। एक बार एक अनुयायी ने उनसे पूछा– "स्वामी जी, आप तो अपने ज्ञान और तपाबलादि से मोक्ष के अधिकारी बन गये है। फिर क्यों आप सारे संसार की चिन्ता करते हैं?"

उन्होंने उत्तर दिया–"भाई, संसार में जाकर देखो, वह

आंसुओं के सागर में डूबा जा रहा है। वह सुलग रहा है, तड़प रहा है। मैं इसे छोड़ कर कैसे जाऊं? मुक्त होऊंगा तो सबको साथ लेकर, नहीं तो मुझे यह मुक्ति नहीं चाहिए।'' इसी विश्वप्रेम की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने विश्व के सभी धर्म–सम्प्रदायों में व्याप्त बुराइयों की पक्षपातरहित समीक्षा की।

समीक्षा से पूर्व उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि समालोचना कर किसी को हानि, दुःख व अपमानित करना मेरा उद्देश्य नहीं। मात्र लोगों को सत्य और असत्य बता कर सत्य को ग्रहण करने की प्रेरणा देना है। ईसाई धर्म के अनुसार, परमात्मा ने आदम की एक पसली निकाल कर उससे नारी बनाई , यह कितनी तर्कहीन बात है। ऐसे अनेक अन्धविश्वासों की बातें प्रस्तुत कीं तथा प्रमाणें द्वारा उनका खण्डन किया।

ईसाई मत के अनुसार, बाइबल ईश्वरकृत है परन्तु चार्ल्स थामस लिखते हैं –"संसार के अधिकांश लोगों को बाइबल की असलियत का पता ही नहीं हैं।" वह आगे लिखते हैं–"बाइबल का परमात्मा क्रूर, बदला लेने वाला, अन्यायी और स्वेच्छाचारी है। उसका चरित्र बड़ा भयंकर है।''
वह परमपिता परमात्मा तो परम दयालु है। फिर बाइबल का

रचनाकार ईश्वर इतना क्रूर कैसे? पाश्चात्य विद्वानों और महर्षि की ईसाई मत की आलोचना में एक मुख्य अन्तर यह है कि पाश्चात्य विद्वानों ने ईसाई मत की समीक्षा तो की परन्तु कोई ठोस विकल्प प्रस्तुत नहीं किया। परन्तु स्वामी दयानन्द ने प्रमाणों के आधार पर वेदों को ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध किया और कहा कि वेदों को सभी पढ़ सकते हैं।

महर्षि दयानन्द ने मुसलमानों के प्रामाणिक ग्रन्थ कुरान में विद्यमान विषयों की समालोचना व समीक्षा सत्यार्थप्रकाश के 14 वें समुल्लास में की है। सर्वप्रथम स्वामी जी ने अपने व्यय पर इसका हिन्दी में अनुवाद करवाया था। फिर प्रसिद्ध मौलवियों से शुद्ध कराकर स्वयं इसका अध्ययन किया। इसी कुरान की एक प्रति आज भी अजमेर में परोपकारिणी सभा में मौजूद है।

कुरान में 6360 आयतें हैं। ऋषि ने 161 स्थलों का प्रमाण उद्धृत कर लिखा है– ***"जो इसमें थोड़ा सा सत्य है यह वेद विद्या के अनुकूल है। शेष सब मुनष्य की आत्मा को पशुवत् बनाकर शांति भंग करा के उपद्रव मचा, मनुष्यों में विद्रोह की भावना फैला परस्पर दु:खोन्नति करने वाला है।"*** इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज हमें आये दिन बम विस्फोटों के

रूप में मिल रहा है। यदि सभी उस महान ऋषि की सत्यवाणी को स्वीकार कर लेते तो आज धर्म के नाम पर खून–खराबा न होता और न ही दहशतगर्दी देखने को मिलती। विश्व के सभी मानव– आर्य (हिन्दू), मुस्लिम, सिख और ईसाई आदि सभी परस्पर प्रेमपूर्वक मिलजुल कर आनन्दमय जीवन व्यतीत करते।

स्वामी जी के समकालीन विद्वान् तथा योग्य मुसलमान भाइयों ने कुरान की कमजोरियों को स्वीकारा। कुछ ने ऋषि की तीखी समीक्षा को सत्य माना परन्तु चुप रहे। कुछ ने प्रभावित होकर कुरान के नये भाष्य लिख डाले।

डॉ. अफजल उल्लामा एम.ए., बेतिया के इमाम आलम खान तथा डॉ. कुवर रफत अखलाक जैसे अन्य अनेक मुस्लिमों ने शुद्ध हो वैदिक धर्म को स्वीकार कर लिया। उस समय के कुछ मुसलमान ज्यादा अक्लमंद तथा रोशन दिल दिमाग के थे।

स्वामी जी ने विश्व के सभी मतों की मिथ्या मान्यताओं का खण्डन इसीलिए किया कि लोग ईश्वर, अल्ला के नाम पर परस्पर विरोध, ईर्ष्या, द्वेष, रक्तपात आदि त्याग दूसरों के मतों के गुणों को अपनायें, अपने दोषों को छोड़कर सत्यपथ

के अनुगामी बनें। प्रेम, त्याग, परोपकार, सेवा आदि गुणों के अमृत से संसार सरोवर को भर दें जिसमें विचर कर हर प्राणी सुखी व आनन्दित हो।

अन्त में स्वामी जी लिखते हैं– ***"यदि कहीं भ्रम से अन्यथा लिखा गया हो तो उसे शुद्ध कर लेवें।"*** कितनी महान थी ऋषि की सोच। काश! विश्व के लोग उन्हें समझ पाते और लाभ उठाते।"

आओ, सत्यार्थप्रकाश को पढ़कर ऋषि के जीवन के मर्म को समझें और अपना जीवन शान्ति और उन्नति की ओर ले जाएं। आज भी आवश्यकता है कि इस कालजयी ग्रन्थ को जन–जन तक पहुंचाया जाए। संकीर्णता से ऊपर उठकर खुले दिल दिमाग से इसे पढ़ें, विचारें और आचरण करें तो विश्व में शान्ति तथा विश्वबन्धुत्व की भावना पैदा की जा सकती है। इससे ही ऋषि का मुख्य लक्ष्य 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' अर्थात् सारे संसार को श्रेष्ठ और नेक बनाने का सपना साकार होगा।

टंकाराश्री अरुणा सतीजा
बी–9 ध्रुव मार्ग,सौम्या अपार्टमेन्ट,
फ्लैट संख्या 101, तिलक नगर,
जयपुर – 302004
सम्पर्क : 0141–2623732
मो. 09460183872

श्रीमती टंकाराश्री अरुणा सतीजा जी

टंकाराश्री अरुणा सतीजा का जन्म 1939 ई0 को पाकिस्तान में पिता डॉ0 हीरानन्द, माँ भगवान देवी के घर हुआ, जो कट्टर आर्यसमाजी परिवार था। आपने राजकीय महिला महाविद्यालय, लुधियाना से बी0ए0 की परीक्षा पास की। 1962 ई0 में आपका विवाह जयपुर निवासी श्री मनोहर लाल सतीजा से हो गया। आपने एम0ए0, बीएड कर 31 वर्षों तक शिक्षा विभाग की निष्ठापूर्वक सेवा की अतः विभाग द्वारा आपको श्रेष्ठ अध्यापिका के रूप में सम्मानित किया गया। आप 1997 ई0 में व्याख्याता पद से सेवानिवृत्त हो, आर्यसमाज की सेवा में जुट गईं। आप 1998 ई0 में महिला आर्यसमाज आदर्शनगर, जयपुर की मन्त्री बनीं। 2002 में टंकारा समाचार के100 सदस्य बनाने पर आपका टंकारा में सम्मान किया गया। 2006 ई0 में आपको टंकारा ट्रस्ट द्वारा ऋषि बोधोत्सव पर तत्कालीन राज्यपाल श्री टी0एन0 चतुर्वेदी जी द्वारा 'टंकाराश्री' से अलंकृत किया गया। आपके लेख आर्य-जगत् की अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी छपते रहते हैं। वर्तमान में आप कन्या गुरुकुल दाधिया, अलवर (राजस्थान) की संरक्षिका हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सम्बन्ध में महापुरुषों के विचार

महर्षि दयानन्द स्वराज्य के सर्वप्रथम सन्देशवाहक तथा मानवता के उपासक थे।

– लोकमान्य तिलक

स्वामी दयानन्द के विषय में मेरा मन्तव्य यह है कि वह हिन्दुस्तान के आधुनिक ऋषियों, सुधारकों और श्रेष्ठ पुरुषों में अग्रणी थे। उनका ब्रह्मचर्य, समाज सुधार, स्वातन्त्र्य स्वराज्य, सर्वप्रतिप्रेम, कार्यकुशलता आदि गुण लोगों को मुग्ध करते थे।

– महात्मा गांधी

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द केवल अपने लिए मुक्ति नहीं चाहते थे अपितु मनुष्य जाति की मुक्ति चाहते थे। स्वामी जी की बताई दिशा में चलकर हम देश सेवा कर पायेंगे और देश को ऊंचा उठा पायेंगे।

– श्रीमती इन्दिरा गांधी

महर्षि दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषों में से थे जिन्होंने आधुनिक भारत का विकास किया जो उसके आचार सम्बंधी पुनरुत्थान तथा धार्मिक पुनरुत्थान के उत्तरदाता हैं। हिन्दू समाज का उद्धार करने में आर्यसमाज का बहुत बड़ा हाथ है। संगठन कार्य दृढ़ता, उत्साह और समन्वयपालकता की दृष्टि से आर्यसमाज की समता कोई और समाज नहीं कर सकता।

– नेताजी सुभाषचन्द्र बोस